उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में हिन्दी पट्टी में सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण

महेश्वर प्रसाद सिंह*

भारतीय नवजागरण का आंदोलन मूलतः साम्राज्यवाद द्वारा भारत के खिलाफ किये गये संस्कृति आक्रमण के विरोध में उत्पन्न आंदोलन था जिसका स्वरूप साम्राज्यवाद–विरोध तथा भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ उपलब्धियों को सामने लाकर भारतीय जन आवाम के इस हमले को निरस्त करने का प्रयास था। इस नवजागरण आंदोलन की विशेषता यह रही कि इसने अंधराष्ट्रवाद की संकुचित भावना को प्रश्रय नहीं दिया, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा लायी गई वैज्ञानिक उपलब्धियों को स्वीकारा, मगर उसके आधार पर अंग्रेजी चिंतन की इस धारा का विरोध किया कि अंग्रेज भारत को सभ्य बना रहे हैं, भारत पिछड़ा देश रहा है और इसके सभ्यता का पाठ अंग्रेज ही पढ़ा सकते हैं। यों तो नवजागरण काल की सभी विचारधाराओं में साम्राज्यवाद विरोध समान रूप से वर्तमान था, मगर उनके विरोध की रणनीति और कार्यनीति में अंतर भी था। इस आधार पर नवजागरण आंदोलनों का वर्गीरण निम्नलिखित भागों में किया जा सकता है।

1. तैयार माल
2. उग्र सुधार आंदोलन काल तथा
3. कट्टर सुधार आंदोलन काल

1.तैयार माल :– इस कालखंड में 1800 से 1828 के काल को समाहित किया जा सकता है जब कम्पनी शासन द्वारा अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार का कार्य प्रारंभ कर यह स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा था कि अंग्रेजी संस्कृति, ईसाई धर्म तथा अंग्रेजी शिक्षा के ही द्वारा भारत का विकास हो सकता है। अंग्रेजों के इस धार्मिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक हमले से भारतीय धर्मों, सामाजिक–शैक्षणिक आदर्शों पर खतरा उत्पन्न हो गया था। ईसाई मिशनरियों का धार्मिक प्रचार कहने को तो धर्म प्रचार था, मगर उसके पीछे निहित स्वार्थ साम्राज्यवाद के लिये उन सांस्कृतिक आधारों को मजबूत करना था, जिन पर खड़ा हो वह जन–आवाम के दिलों में अंग्रेजियत को बैठा ब्रिटिश परस्त जनता को कर सके। 1800 से 1828 का काल ऐसे हमले के खिलाफ जन–चेतना को तैयार करने का काल था।[1]

***शोध छात्र, इतिहास विभाग बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।**

2. उग्र सुधार आंदोलन काल :– 1828 से 1875 का काल उग्र आंदोलन का काल था, जब सुधारक हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराइयों की निराकरण करना चाहते थे–जातिवाद, सती प्रथा, मूर्ति–पूजा आदि ऐसी ही बुराईयाँ थीं। इसमें राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि थे जो शुद्ध एकेश्वरवाद पर बल दिया तथा वेदों, उपनिषदों की नई व्याख्याएँ प्रस्तुत की। राजाराम मोहन राय ने उपनिषदों और वेदान्त दर्शन के बांग्ला व अंग्रेजी के अनुवाद लिखे और प्राचीन हिन्दू धर्म की ओर लौटने तथा उपनिषदों के शुद्ध एकेश्वरवाद पर बल दिया। उन्होंने थोड़ी यूनानी और हबरानी भी सीखी और ईसा के चमत्कारों के अंश को निकाल कर ईसा के उपदेशों को बांग्ला व संस्कृत अनुवाद के साथ प्रकाशित किया। ईसाई लोग चमत्कारों से शून्य ईसा मसीह के उपदेशों के प्रकाशन से बहुत चिढ़े और दोनों ओर से उत्तर–प्रत्युत्तर का क्रम प्रारंभ हुआ। ईसाई मिशनरियों ने विद्वेशवश जब उनके उत्तर छापने से इंकार कर दिया तो उन्होंने अपना छापाखाना खोलकर ईसाईयों के विषैले प्रचार तथा हिन्दू धर्म पर मिशनरियों द्वारा भद्दे आक्षेपों का निराकरण किया। शुद्ध एकेश्वरवाद की उपासना के लिए उन्होंने 20 अगस्म, 1828 को चितपुर रोड पर ब्रह्म समाज की पहली बैठक की।[2]

ब्रह्म समाज का आंदोलन :– इस संस्था का मुख्य आंदोलन जिन सुधारों के लिए चला, उनमें जाति–पाति, छुआछूत को मिटाना, स्त्रियों की स्थिति और स्थान को सामंजस्यपूर्ण ढ़ंग से स्थापित करना आदि था। राजाराम मोहन राय ने सती दाह के विरूद्ध आंदोलन करके उसे 1829 ई. में कानूनन बंद करवा दिया। उनके आंदोलन के परिणामस्वरूप ब्रह्म समाज के दायरे में विधवा विवाह कानून जायज हो गया। विधवा–विवाह, स्त्री–शिक्षा, बहु–विवाह निषेध आंदोलन को राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पंडित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, श्री केशव चन्द्र सेन, रानाडे आदि सभी नेताओं ने समान भाव से संचालित किया। पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्न से हिन्दू समाज में विधवा–विवाह कानूनन जायज होकर रह गया। वह समाज में सर्वसम्मत नियम नहीं बन सका। बहु–विवाह को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाने लगा और रईसों की आर्थिक स्थिति में गिरावट से भी वह रूक गया। स्थायी रूप से एकमात्र स्त्री शिक्षा पर ज्यादा ध्यान दिया गया। पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के आंदोलन से सरकार ने स्त्री शिक्षा के प्रति अपने उत्तरादायित्व को समझा। नेताओं द्वारा चलाये जा रहे आंदोलन लोकमत को झकझोर दिया। किंतु ब्रिटिश हुकूमत ने इस प्रबल सामाजिक आंदोलनों का सहारा लेकर शूद्रों की स्थिति सुधारने के लिए जरा भी ध्यान नहीं दिया। उसने शूद्रों को न तो शिक्षित करने की दिशा में कुछ किया और न उन्हें पुलिस फौज आदि की नौकरियों में स्थान दिया तथा न उन्हें आर्थिक दृष्टि से सहारा दिया। राजाराम

मोहन राय के आंदोलन में अंर्तजातीय विवाह भी शामिल था, जो कुछ दूर तक सफल भी हुआ, जिसका कारण शायद यह था कि ब्रह्म समाज अंग्रेजों के सम्पर्क में यह सफल हुआ मध्यम वर्ग द्वारा गठित था।[3]

वास्तविकता यह है कि आधुनिक भारत का अरूणोदय राजाराम मोहन राय से ही शुरू होता है। वे सिर्फ समाज सुधारक ही थे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि राजाराम मोहन राय ने प्रजातांत्रिक फ्रांस के तिरंगे झंडे का अभिनंदन किया था। स्पेन की स्वाीनता की खुशी में उन्होंने सभा की थी। विद्वानों का मत है कि राजाराम मोहन राय अंग्रेजों के मित्र थे, पर साथ ही प्रजातंत्रवादी भी थ। उनके साथियों में ऐसे लोग भी थे, जो फ्रांसीसी जनता के क्रांतिकारी विचारों से सहानुभूति रखते थे। केशवचन्द्र सेन ने भी प्रजातंत्रीय क्रांतिकारी मनोवृति की ओर लोगों को प्रेरित किया। उनके अनुयायियों ने मिलकर सर्वप्रथम राजनीतिक संस्था ''इंडिया लीग'' की स्थापना की थी।[4]

3. कट्टर सुधार आंदोलन काल :– जिस तरह यूरोपीय धार्मिक सुधार आंदोलन में लूथर तथा अन्य धार्मिक सुधारकों के खिलाफ इगनेशियस लायोला ने जुसूहट सम्प्रदाय की स्थापना 1540 ई. में की तथा ट्रेण्ट की महान परिषद् 1545–63 द्वारा प्रतिसुधारणा आंदोलन शुरू हुआ, उसी तरह भारत में भी उन्नीसवीं सदी की धार्मिक सुधारणा में श्री रामकृष्ण परमहंस तथा थियोसोफी के प्रयत्नों से एक प्रतिसुधारणा आंदोलन प्रारंभ हुआ। पहले आंदोलन उदार और सुधार की दृष्टि से बहुत अग्रगामी थे। वे तर्क को आधार मानकर चलने वाले थे और तर्क की कसौटी पर खरी न उतरने वाली रूढ़ियों एवं कुरीतियों से हिन्दू धर्म, पारसी मत तथा इस्लाम को मुक्त करना चाहते थे। किंतु नये आंदोलन धर्म में आंतरिक सुधार चाहते हुए भी, उसकी प्रत्येक रूढ़ि एवं परम्परा की रक्षा करना चाहते थे। इन रूढ़ियों एवं परम्पराओं का वे तर्क एवं विज्ञान से समर्थन करते थे। 1873 में कलकत्ता में हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये सनातन धर्मरक्षिणी सभा स्थापित हुई थी, किंतु उसकी पूर्ण रक्षा का प्रबलतम समर्थन श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द तथा थियोसोफिकल द्वारा हुआ।[5]

श्री रामकृष्ण परमहंस, जिन्होंने सभी धर्मों में एक समभावना की स्थापना का प्रसास किया था, तथा कई प्रकार की समाधियों तथा प्रार्थनाओं के बाद सभी धर्मों का सम्यक पाठ कर उनकी मूलभूत आस्थाओं में वर्तमान समानता का विवेचन किया था, के शिष्यों में व्यापक चर्चित हुए विवेकानन्द।

विवेकानन्द :– रामकृष्ण की मृत्यु के बाद छः वर्षों तक तिब्बत आदि में बौद्ध दर्शन का अध्ययन करने के बाद भारत के विभिन्न भागों का भ्रमण 1892 में कर

वे 1893 के सितम्बर माह में शिकागो में आयोजित सर्व धर्म सम्मेलन (पार्लियामेंट ऑफ रेलिजेन्स) में अपना प्रख्यात भाषण किया। अमेरिकी अखबारों में ऐ एक ने लिखा, ''सर्व धर्म सम्मेलन में निःसंदेह विवेकानन्द सबसे बड़े व्यक्ति हैं। उनका भाषण सुनने के बाद हम यह अनुभव करते हैं कि उस शिक्षित राष्ट्र यानि भारत को मिशनरी भेजना कितना मूर्खतापूर्ण है।''[6]

स्वामी विवेकानन्द के प्रयत्नों से पाश्चात्य लोगों की दृष्टि में भारत का सम्मान बढ़ा। पूर्व और पश्चिम के बीच में वे पहले सांस्कृतिक दूत थे। उनका जनसेवा का कार्य आदर्श एवं स्पृहणीय था। उन्होंने हिन्दू धर्म के वर्तमान स्वरूप की कठोर भर्त्सना की है। छुआछूत आदि कुरीतियों के वे घोर विरोधी थे। किंतु श्री राजाराम मोहन राय तथा स्वामी दयानन्द की भांति उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि हिन्दू जाति को विघटित करने वाली और हिन्दू धर्म को दूषित करने वाली मूर्ति–पूजा है। उन्होंने मूर्ति–पूजा के हानिप्रद परिणामों की ओर हिन्दू जनता का ध्यान नहीं खींचा। हिन्दू धर्म की विभिन्न रूढ़ियों तथा कर्मकांड में उनकी पूरी श्रद्धा थी। मूर्ति पूजा को वे पूजा की एक उत्तम विधि समझते थे। उनका मत था कि हिन्दू धर्म का प्रत्येक अंश बहुमूल्य है, उसकी सुरक्षा होनी चाहिए और सुधारकों का मार्ग ठीक नहीं है। पुराने सभी विचार अंधविश्वास हो सकते हैं, किंतु अंधविश्वासों के इस विशाल समूह में सुवर्ण एवं सत्य की कणिकायें हैं। ''क्या तुमने ऐसा साधन ढूँढ़ लिया है कि तुम सुवर्ण को सुरक्षित रखते हुए उसकी अशुद्धि को दूर का सको।''[7]

थियोसोफी :– रूसी महिला व्लेवेतस्की द्वारा परिवर्तित यह आंदोलन विचित्र परिस्थितियों में दयानन्द तथा आर्य समाज के द्वारा भारत में लाया गया।7 सितम्बर, 1875 में न्यूयार्क में स्थापित इस थियोसोफिकल सोसाईटी के कर्नल आल्काट तथा व्लेवेत्सकी भारत आये। भारतीयों में अपने को लोकप्रिय बनाने के लिये इस संस्था के नेता भारतीय धर्मों की ओर झुके। बौद्धों का तंत्रवाद व्लेवेत्स्की को बहुत रूचिकर प्रतीत हुआ। उसके कथनानुसार अडयार (मद्रास) के एक कक्ष में, उसे तिब्बत के कूट होमी तथा अन्य गुरूओं से गुप्त संदेश प्राप्त होते थे। 1884 तक भारत में थियोसोफी की 100 से ऊपर शाखायें स्थापित हो चुकी थीं। इसी वर्ष 21 फरवरी को आल्काट और व्लेवेत्स्की विलायत चले गये। इस विषय को लेकर दो दल हो गये और एक दल ने व्लेवेत्सकी के सारे पत्र क्रिश्चयन कॉलेज मैगजीन को दे दिये और दूसरे दल ने अपने पर आँच न आने देने के लिये व्लेवेत्स्की की वह विशेष कक्ष ही नष्ट कर दिया।[8]

भारत का नवजागरण काल ऐसे आंदोलन का काल था, जब भारत में मध्यम वर्ग स्वरूप ग्रहण कर रहा था। मध्यम वर्ग के स्वरूप ग्रहण करने का

परिप्रेक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अपनायी गई उन आर्थिक–सामाजिक संबंधों में था, जिसे साम्राज्यवाद में अपनी सत्ता की स्थिरता के लिये भारत में बनवाया। उस आर्थिक–सामाजिक संबंधों के स्वरूप–विश्लेषण का आधार तो मैकाले के इस कथन से ही मिल जाता, जिसमें उन्होंने कहा था, ''हम हिन्दुस्तान के अंदर एक ऐसी नई कौम पैदा कर देना चाहते हैं जो देखने में भले ही हिन्दुस्तानी मालूम हो, लेकिन जिसका दिल और दिमाग दोनों अंग्रेजियत की बू से भरे हुए है।''[9] मैकाले की इस नई स्थापना को स्वरूप प्रदान कराने के लिए जरूरी था कि भारत में अंग्रेजी जानने और अंग्रेजियत परस्त तबका स्वरूप ग्रहण करे। इसी प्रयास की फल था कि 18वीं सदी के ही उत्तरार्द्ध में यह प्रयास शुरू कर दिया गया था– उसी समय जब 1784 में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी का जन्म हुआ तथा कलकत्ते में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई थी।

ईस्ट इंडिया कम्पनी में काम करने वालों तथा अंग्रेजी राज्य के मददगारों को लेकर एक मध्यम वर्ग की सृष्टि हुई, जिसके अंतर्गत अंग्रेजों को मित्र मिले। अंग्रेजों के निकट सम्पर्क में रहने के कारण इस मध्यम वर्ग पर अंग्रेजी सभ्यता का असर पड़ने लगा। उसने उस समय के यूरोप के सामाजिक आदर्शों की तुलना भारतवर्ष के उस समय के रूढ़िग्रस्त सामाजिक व्यवहारों से की। फलस्वरूप वह यूरोप के प्रति ज्यादा आकर्षित होने लगा। अपनी संस्कृति के प्रति उसके सम्मान की दृष्टि संकुचित होने लगी। इसके अलावा एक प्रभाव यह भी पड़ा कि नये रूप में भरतवर्ष का संबंध दुनिया के और हिस्सों से हो गया। इसके फलस्वरूप उसका दृष्टिकोण कुछ व्यापक हुआ। पश्चिम के सम्पर्क से उस नये रूप में भौतिक विज्ञान की एक ऐसी दृष्टि मिली, यद्यपि यह बहुत स्पष्ट नहीं थी, जिससे उसने प्रत्येक बात की कार्यकरण की परम्परा और विकास क्रम के अंदर से देखना शुरू कर दिया। इस प्रारंभिक समय में यूरोप के औद्योगिक विकास से उत्पन्न व्यक्तिवाद ने भारतवर्ष के एक ऐसे वर्ग में अपना घर बनाया, जिसकी इंग्लैंड से किसी प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा नहीं थी, जो निरीह और नौकरी का भूखा था तथा जिस पर यूरोप की क्रांतियों का नहीं, इंग्लैंड की सुधारवादी सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव था, इसलिए इस वर्ग में अंग्रेजों के प्रति मैत्री की भावना बलवती थी।

एक अंग्रेज परस्त मध्यम वर्ग के निर्माण में अन्य प्रचारों के अलावा एक प्रमुख प्रचार–कारक था ईसाई धर्म का प्रचार जिसका उद्देश्य मूलतः यही था कि सामाजिक–आर्थिक तौर पर ब्रिटिश शासन के प्रति प्रतिबद्धता के साथ–साथ धार्मिक प्रतिबद्धता को भी सुनिश्चित कर दिया जाए। विकासमान पूंजीवाद सभ्यता–संस्कृति में हुए परिवर्तनों का असर ईसाई धर्म पर तो था, जिसे लेकर वह भारत आया और भारत भी इसके लिए तैयार था कि धार्मिक रूढ़ियों से मुक्ति तथा

जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण ईसाई मत में था, उसे स्वीकार कर लिया जाए, परन्तु पूर्णतः ईसाईयत को स्वीकार करने को भारत तैयार नहीं था। इस कारण कांग्रेस की स्थापना पूर्व राष्ट्रीय आंदोलन में धर्म तथा सम्प्रदाय का प्रभाव बना रहा।

इस भावधारा का नेतृत्व स्वर्गीय राजाराम मोहन राय ने किया। उन्होंने 1828 ई. में ब्रह्म समाज की स्थापना करके जिस आंदोलन की सृष्टि की, उसका असर देश के मध्यम वर्ग पर व्यापक हुआ। हिन्दुस्तान को पश्चिम के सम्पर्क से जो कुछ भी सर्वोत्तम मिला, उसको उन्होंने स्वीकार कर लिया। उन्होंने उन धार्मिक रूढ़ियों का विरोध किया, जिससे देश की सामाजिक विकास की गति रूकती थी और एक ऐसी चेतना दी, जिससे हिन्दुस्तान की सभी जातियों और धर्मों की एकता संभव थी। इससे अंग्रेजी शिक्षा–सम्पन्न लोगों के अंदर ईसाईयत की ओर जो बढ़ाव था, वह रूक गया। मध्यम वर्ग के अंदर अंग्रेजों के साये में अपने अधिकारों के लिए एक चेतना भी पैदा हुई।

भारत की दुर्दशा और अंग्रेजों की अंधेरगर्दी के यथार्थपरक काव्यात्मक चित्र खड़ी बोली में ही खुलकर आ सकते थे। उन्नीसवीं सदी में भारतीय समाज के साथ हिन्दी भी संक्रमण के दौर से गुजर रही थी। कहना न होगा कि हिन्दी में जो खड़ी बोली आंदोलन शुरू हुआ उसका प्रत्यक्ष लक्ष्य यह था कि कविता को अतीत की धार्मिक और श्रृंगारिक दुनिया से मुक्त कर राष्ट्रीय यथार्थ से जोड़ना था।

संदर्भ सूची :–

1. भारतेन्दु समग्र, सम्पादक हेमन्त शर्मा, प्रचारक ग्रन्थावली, पृ. 989।
2. सत्यकेतु विद्यालंकार तथा हरिदत्त वेदालंकार, आर्य समाज का इतिहास, प्रथम भाग, (आर्य स्वाध्याय केन्द्र, ए–1–32, सफदरगंज इन्क्लेव, नई दिल्ली, 1982), पृ. 162।
3. आज का भारत, रजनी पाम दत्त, पहला अध्याय।
4. वही, पृ. 16।
5. आधुनिक भारत, विपन चन्द्रा, पृ. 128।
6. दि न्यूयार्क हेराल्ड।
7. माई मास्टर, पृ. 13
8. सोलोसयोफ, माडर्न प्रिस्टेटस ऑफ आईसिस।
9. नन्द किशोर शर्मा, स्वामी दयानन्द सरस्वती का सामाजिक–राजनीतिक चिंतन, पीएच.डी शोध ग्रंथ, 1990, अप्रकाशित, पृ. 195।

भारत में कम्युनिस्ट पार्टियों का उदय एवं विकास

डॉ० गीतांजलि

1962 में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण को लेकर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में जबर्दस्त भूचाल आ गया। एक हिस्सा यह मानने को तैयार नहीं था कि कोई कम्युनिस्ट देश दूसरे देश पर आक्रमण करेगा। दूसरा हिस्सा चीन की इस कार्रवाई को सही नहीं समझता था। परिणामतः कम्युनिस्ट पार्टी में विभाजन हो गया। एक धड़ा कम्युनिस्ट पार्टी से अलग हो गया और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नाम से अलग पार्टी बना ली। 1964 में यह विभाजन हुआ था। दोनों पार्टियों ने अपनी अलग–अलग कांग्रेस आयोजित की और नये सिरे से दोनों ने अपनी नीति एवं सिद्धांत बनाये। उसके बाद दोनो पार्टियों ने अपनी नीतियों में कोई बदलाव नहीं किया है। नई आर्थिक नीतियों के संदर्भ में जरूर कुछ तब्दीलियाँ की गई हैं। आजादी के पहले भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने भारतीय क्रांति को दो चरणों वाली प्रक्रिया बताया जिसमें वर्तमान साम्राज्यवाद विरोधी, सामंत विरोधी चरण (एक राष्ट्रीय जनवादी चरण) के बाद पूंजीवाद विरोधी (समाजवादी) चरण आयेगा। पार्टी ने मोटे तौर से मजदूर वर्ग, मध्यम वर्ग एवं राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के राष्ट्रीय जनवादी मोर्चे की रणनीति का अनुसरण किया। 1947 में राष्ट्रीय आजादी की प्राप्ति ने भारत और विश्व के लिए एक नये युग, एक ऐतिहासिक घटना का सूत्रपात किया। यह भारत में एक अभूतपूर्व जन–उभार तथा विश्व में शक्तियों के नये सह–संबंधों का परिणाम था।[1]

क्रांति का नया चरण :– यह राष्ट्रीय क्रांति की विजय का सूचक था, हालांकि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने जैसा सोचा था या अनुमान लगाया था उससे भिन्न घटना क्रम विकसित हुआ। देश का विभाजन हुआ जिसके गंभीर परिणाम सामने आये। फिर भी उसने भारतीय जनता के समाने राजनीतिक आजादी एवं राष्ट्रीय संप्रभुता को मजबूत करने और आर्थिक आजादी के लिए काम करने के वास्ते व्यापक अवसरों का मार्ग प्रशस्त कर दिया। हमारी जनता से क्रांति को एक नये चरण, एक आत्म–निर्भर, लोकतांत्रिक एवं गतिशील अर्थव्यवस्था का निर्माण करने तथा उसका नवीकरण करने, हमारी जनता के बेहतर जीवन स्तर को सुनिश्चित करने और लोकतंत्र के क्षेत्र का विस्तार करने एवं उसे समष्द्ध करने, लोकतांत्रिक संस्थाओं का निर्माण करने तथा व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रताओं एवं तेजी से सांस्कर्षतिक प्रगति को सुनिश्चित करने के साम्राज्यवाद विरोधी और सामंत विरोधी कर्तव्यों को पूरा करने के चरण तक ले जाने की अपील की गई।

इस अवधि में महान उपलब्धियाँ हासिल की गई, एक सार्वभौम राष्ट्रीय राज्य की प्राप्ति, बालिग मताधिकार एवं बहुदलीय प्रणाली के आधार पर चुनावों के साथ सरकार के संसदीय रूप तथा धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र पर आधारित एक संविधान का अपनाया जाना, विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का अलगाव, एक संघीय किस्म की सरकार जिसमें केन्द्र तथा राज्यों को अधिकार आवंटित किये जायेंगे। सभी वर्गीय सीमाओं के साथ ये बड़े कदम हैं। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के दौरान अनेक बुनियादी पहलुओं पर एक आम सहमति कायम हुई। एक ऐतिहासिक उपलब्धि रही है सामंती रजवाड़े राज्यों की समाप्ति, उनके भूतपूर्व प्रदेशों का पड़ोसी क्षेत्रों में विलय और भाशाई आधार पर और इस बहुभाषी, बहुराष्ट्रीय देश में जनता की आकांक्षाओं एवं लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अनुरूप भारत का पुनर्गठन। यह वास्तव में नीचे से और ऊपर से क्रांति थी जिसमें टालमटोल एवं जनता के प्रयासों पर काबू पाया गया। शक्तिशाली तथा संयुक्त जनांदोलनों ने जिसमें कम्युनिस्टों ने अन्य ठोस सामंत विरोधी ताकतों के साथ प्रमुख भूमिका अदा की, इस ऐतिहासिक उपलब्धि को संभव बनाया, और भारत के राष्ट्रीय एकीकरण को आगे बढ़ाया गया और भाषाई एवं जातीय इकाईयों को राजनीतिक रूप से सुदृढ़ किया गया जिनमें उनकी पहचान को स्वीकार किया गया और इस तरह उनके लिए आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास की व्यापक संभावनाएँ उन्मुक्त की गई।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के राष्ट्रीय पूंजीवादी नेतृत्व ने जिन्हें 1947 में विभाजित भारत में सत्ता हस्तांतरित की गई, संविधान तैयार करने और स्वतंत्र भारत के नये राज्य का निर्माण करने की पहल की। अंतर्विरोधों के जरिये राज्य मशीन एवं तंत्र का निर्माण किया गया और साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद के साथ समझौता किया गया। एक विशाल अति–केन्द्रीकृत तथा भारी–भड़कम राज्य मशीन निर्मित की गई है। एक विशाल देश का प्रशासन चलाने की प्रक्रिया में जिसका अत्यंत जटिल है, नौकरशाही, अति–केन्द्रीकरण, व्यापक भ्रष्टाचार, राजनीतिज्ञ, पुलिस–अपराधी गिरोह पर आधारित माफिया के बढ़ते ताने–बाने जो दोनों आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में काम करते हैं, के नकारात्मक पहलू भी विकसित हुए हैं।[2]

आर्थिक क्षेत्र में आर्थिक आजादी की दिशा में काफी प्रगति हुई है। दोनों उद्योग तथा कर्षि क्षेत्र में उत्पादक शक्तियों का विकास हुआ है। उपनिवेशी अवधि

एम.ए.,पीएच.डी. इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

ा के अनेक विदेशी प्रतिष्ठानों के राष्ट्रीयकरण, अत्यंत आवश्यक आधारभूत ढ़ाँचे के निर्माण के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण और अनेक भारी एवं बुनियादी और औद्योगिक परियोजनाओं के निर्माण में सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों में बड़ी सहायता मिली, जिससे इस प्रगति में काफी मदद मिली। मजबूत एवं विविध ाकष्त सार्वजनिक क्षेत्र ने जिसका बुनियादी उद्योग आधार रहा है, एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की बुनियाद रखी। लेकिन विकास के पूंजीवादी पथ ने जिसका अनुसरण किया गया है, सामाजिक ध्रुवीकरण में योगदान दिया है और असमानता बढ़ायी है। इजारेदार घरानों की परिसम्पत्ति कई गुना बढ़ गई है। उसके साथ ही छोटे एवं मध्यम उद्योग, खासकर लघु क्षेत्र काफी बढ़े हैं। अन्य दस या बारह प्रतिशत ने काफी समषद्धि हासिल की है जबकि 30 से 40 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं। एकदम अपर्याप्त रोजगार के अवसरों, स्वरोजगार की सीमित संभावना, मूलगामी भूमि सुधार की तोड़फोड़ तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों की बंदी एवं छँटनी की वजह से बेरोजगारी में भारी वषद्धि होती रही है।

औद्योगिक विकास की दर धीमी हो रही है। योजना उलट–पुलट की गई है। देश का आंतरिक तथा विदेशी कर्ज काफी अधिक बढ़ गया है और हम कर्ज जाल के निकट पहुँच गये हैं। हाल का वित्तीय राजकोषीय संकट जो एकदम प्रतिकूल भुगतान संतुलन की स्थिति में अभिव्यक्त हुआ, रोगसूचक था। बढ़ते बजटीय घाटे तथा असमान कर ढ़ाँचे ने अधिकाधिक विकास के बोझ को आम लोगों पर डाल दिया है। वषद्धि तथा विकास में क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ गया है। राज्य के संसाधनों तथा सार्वजनिक क्षेत्र की लूट, विशाल कालाधन एवं विदेशी डिपॉजिट, मुनाफाखोरी और तस्करी व्यापक हो गई है।[3]

अपनी स्थापना के बाद से ही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने समाजवाद को स्वतंत्र भारत के भावी विकास का लक्ष्य स्वीकार किया। इस लक्ष्य को सुसंगत लोकतंत्र के जरिये उपर्युक्त कर्तव्यों को पूरा करके ही हासिल किया जा सकता है। जब उपर्युक्त कर्तव्यों को पूरा किया जायेगा तो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था उत्पादक शक्तियों के उच्च स्तर तथा उच्च उत्पादकता के साथ गतिशील, कारगर एवं स्व–उत्पादक होती जायेगी, जनता के मंगल कल्याण के लिए विज्ञान तथा प्रविधि की उपलब्धि ायों को आत्मसात करेगी और करोड़ो जनता की चहलकदमी को व्यापकतम संभावनाएँ प्रदान करेगी ताकि पिछड़ेपन की कठोर विरासत को दूर किया जा सके और हमारे विशाल भौतिक तथा मानव संसाधनों के पूर्ण इस्तेमाल के लिए परिस्थितियाँ निर्मित की जा सके।

जब लोकतंत्र मजबूत होगा और उसका विस्तार होगा एवं जीवन के सभी क्षेत्रों में जनता को पूर्ण लोकतांत्रिक अभिव्यक्ति प्रदान करेगा, सभी तरह के भेदभाव, असमानता तथा धर्म, जाति, लिंग एवं भाषा या जातियता के आधार पर सभी तरह के उत्पीड़न का उन्मूलन करेगा और उपर्युक्त प्रक्रियाओं में अधिकाधिक कारगर भूमिका अदा करेगा तो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और समाजवाद का समर्थन करने वाली सभी अन्य शक्तियाँ भी मजबूत होंगी।[4] यह एक लम्बी अवधि होगी जिसके दौरान देश को अनेक राजनीतिक संरचनाओं एवं गठबंधनों के दौर से गुजरना होगा जिसके जरिये प्रतिक्रिया की ताकतें हासिये पर आ जायेगी और लोकतंत्र तथा समाजवाद की ताकतें अधिकाधिक ताकतवर होकर सामने आयेंगी। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अपनी जिम्मेवारियाँ पूरी करते हुए अपने विचारधारात्मक राजनीतिक आधार और जनाधार में भी काफी मजबूत होगी। इस तरह समाजवाद में संक्रमण के लिए वस्तुगत तथा आत्मगत परिस्थितियाँ परिपक्व होंगी।

इस पथ और भारतीय परिस्थितियों एवं वर्तमान ऐतिहासिक अवधि में समाजवाद की अवधारणा को पूरी सावधानी से विचार विमर्श करके पुनः परिभाषित किया जाना है। अभी यही कहा जा सकता है कि यह एक लोकतांत्रिक बहुसंरचनात्मक अर्थव्यवस्था के साथ जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र एक नेतष्त्वकारी भूमिका अदा करेगा, मजदूर वर्ग के नेतष्त्व में मजदूरों, किसानों, सभी अन्य मेहनतकश जनता, बुद्धिजीवियों और मध्यमवर्ग का राज्य होगा। किसान स्वामित्व को मूलगामी कषि सुधार, कषि विकास नीतियों के पूर्ण कार्यान्वयन और आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्वैच्छिक कॉऑपरेटिवों को प्रोत्साहन के आधार पर फलने–फूलने की पूरी सुविध ाएँ दी जायेंगी। औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व नेतष्त्वकारी भूमिका अदा करेगा जबकि निजी क्षेत्र, कॉऑपरेटिव क्षेत्र, लघु क्षेत्र साथ–साथ कायम रहेंगे और पूरी अर्थव्यवस्था में पारस्परिक रूप से हाथ बँटायेंगे।[5] राज्य आर्थिक विकास को नियंत्रित करने और उसे बढ़ाने, जनता के मंगल कल्याण को बढ़ाने, शोषण समाप्त करने, सामाजिक एवं क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने, सार्वभौमिकता की रक्षा करने और आत्म–निर्भरता विकसित करने के लिए नियोजन की कार्यविधि का इस्तेमाल करेगा। यह मानवीय एवं न्यायोचित समाज होगा जिसमें सबों को समान अवसर प्रदान किया जायेगा तथा लोकतांत्रिक अधिकारों की गारंटी दी जायेगी जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का खत्म करने का मार्ग प्रशस्त करेगा, एक ऐसा समाज जिसमें मेहनतकश करोड़ो लोगों द्वारा उत्पादित धन पर कुछ लोगों द्वारा कब्जा नहीं किया जायेगा।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवाद के विज्ञान को सुसंगत लोकतंत्र और समाजवाद की दिशा में अपने पथ को निर्धारित करने के लिए अपरिहार्य समझती है। वह भारतीय समाज को समझने एवं उसमें परिवर्तन लाने के एक उपकरण के रूप में मार्क्सवाद प्रणाली को इस्तेमाल करने का प्रयास करती है। कमठमुल्लावादी तथा